शोधामृत

(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की अर्धवार्षिक, सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित शोध पत्रिका)

Online ISSN-3048-9296
Vol.-1; issue-2 (July-Dec.) 2024
Page No- 65-70

©2024 Shodhaamrit (Online)
www.shodhaamrit.gyanvividha.com

डॉ0 प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग,
श्रीमती अरुणा असफ अली राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, कालका (हरियाणा)

Corresponding Author :
डॉ0 प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक, संस्कृत-विभाग,
श्रीमती अरुणा असफ अली राजकीय स्नात्कोत्तर महाविद्यालय, कालका (हरियाणा)

मनुस्मृति मे वर्ण विज्ञान

वेद के अनुसार ब्राह्मण को परमपिता परमात्मा के मुख से उद्भव कहा गया है। क्षत्रिय को विराट पुरुष का बाहु , वैश्य को उरु तथा शूद्र पाँव कहा गया है। अर्थात् ब्राह्मण को मुख कहने से अभिप्राय यह हो सकता है कि वह शिक्षादि का कार्य मुख से करता है। मुख की गणना उत्तम अंगो में कि गई है। इसके अन्नतर क्षत्रिय को बाहु शब्द अभिहित किया गया अर्थात क्षत्रिय को बाहुबल के द्वारा समस्त जगत् की रक्षा कर तथा न्याय पूर्वक शासन करने की मान्यता दी गई है। वैश्य के लिए उरु शब्द का प्रयोग किया जाता है, जिसका सामान्यतः अर्थ जंघाएँ होती है। अर्थात् व्यापार प्रबंधन समस्त कार्य व आर्थिक स्थिति वैश्यों पर आधारित होती है। शूद्र को विराट पुरुष के पाँव कह कर संम्बोधित किया है, क्योंकि शूद्र में सेवा भाव आवश्यक माना गया है। निःसन्देह चारों वर्णों के वैज्ञानिक दृष्टिकोण को मानकर तथा जानकर मनुष्य जीवन में उन्नति प्राप्त करनी चाहिये। महर्षि पतंजलि के अनुसार वर्ण अक्षर वा ध्वनि अथवा शब्द कहते हैं। यदि ऐतरेयब्राह्मण के वैज्ञानिक भाष्यकार आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक के वेदविज्ञान आलोक ग्रन्थ के विज्ञान पर दृष्टिपात करें तो वर्ण रश्मि है जिससे से समस्त पदार्थ विद्या उत्पन्न होती है। यह रश्मि ही शब्द है, छन्द है, अक्षर भी यही है, ध्वनि भी यही है, यही आंग्लभाषा भाषा में वायब्रेशन कहलाती है। अक्षरों को आकाश से ऋषियों द्वारा समाधि अवस्था में चुना जाता है वा परा और पश्यन्ति अवस्था में सुना जाता है और शिष्यों को यह ज्ञान प्रदान किया जाता है यही वर्ण का वर्णत्व है[1]। वर्ण शब्द की निष्पति वृ वरणे धातु से हुई है जिसका अर्थ है चुनना। भौतिक लोक में जो कार्य जिसके द्वारा चुना जाये वह वर्ण कहलाता है। वर्णों में ब्राह्मण प्रथम स्थानी परिगणित है। भारतीय वेदादिशास्त्रों ने ब्राह्मण को मुख की संज्ञा दी है। जिसका स्पष्ट प्रभाव मनुस्मृति पर दिखाई देता है[2], क्योंकि कोई भी विद्या हो वा वेद विद्या हो वह सर्वप्रथम मुख से निस्सरित होकर ही किसी भी मनुष्य

को समझ आती है तथा जो जिस विद्या का विद्वान् होता है वह मुख से ही विद्या कहेगा। अनन्तर वह क्रिया रुप में लागु होती है। अतः सबसे पहले ब्राह्मण का कार्य पढ़ना – पढ़ाना होता है। इसके बाद यज्ञ करना – कराना ब्राह्मण का अग्रिम कार्य होता है। वेद के अनुसार यज्ञ विश्व का श्रेष्ठ कार्य होता है अर्थात् संसार में जितने भी कार्य होते हैं वे सब वेद वा यज्ञ से ही प्रसिद्ध होते हैं। दान देना तथा दान लेना ब्राह्मण के उत्तम कार्यो मे से एक है। दान देना पुण्य तथा दान ग्रहण भी पुण्य है, क्योंकि उत्तम कार्यो जिसमे यज्ञ आदि सम्मिलित है उसमें उत्तम वा सात्विक दान ग्रहण करना चाहिए[3]। ये समस्त कर्म ब्राह्मण को उत्तम होने से उत्तम श्रेणी में प्रतिष्ठित करते हैं। मनुस्मृति के अनुसार वेदों मे मनुष्य से ब्राह्मण तथा ब्राह्मण के कार्य करता हुआ मनुष्य ऋषित्व को प्राप्त होता है[4]। ब्रह्मा ने ब्राह्मण को हव्य – कव्य पहुंचाने के लिए तथा जगत् की रक्षा हेतु तपस्या कर ब्राह्मण को स्वकीय मुख से सृजन किया[5]। वैदिक मान्यता के अनुसार श्रुति को मुख द्वारा कहने से ही शास्त्राधिगम कर मनुष्य ब्राह्मणत्व को प्राप्त होता है, इसी परम्परा से सभी वैदिक बनते हैं और स्वयं का तथा दूसरों का हित करता है जिसके मूल में वेद होता है। अत: ब्राह्मण–अनेक यज्ञों द्वारा देवताओं और पितरों की सेवा से उत्तम कार्य करते हुए श्रेष्ठता को प्राप्त होते हैं[6]। मनु की उद्घोषणा है कि प्राणियों में जीव, जीवों में बुद्धिजीवी, बुद्धिजीवियों में मनुष्य तथा मनुष्य में ब्राह्मण श्रेष्ठ है। वेद विज्ञानवेत्ता महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में कहा है कि अनेकों शास्त्रों को पढ़ने के अनन्तर ही ब्राह्मण शरीर बनता है। इसी कारण वर्णो में ब्राह्मण को सर्वप्रथम वर्णस्थान प्राप्त है[7], क्योंकि वेद विद्या के प्रभाव से समस्त लोको में मनुष्य का कल्याण कारक ब्राह्मण के अतिरिक्त कोई अन्य नहीं हो सकता, क्योंकि महर्षि वेद व्यास की मान्यता है की ब्राह्मण को वेद के ज्ञान का आत्मसात् करना आवश्यक रूपेण अनिवार्य हैं। महर्षि पतंजलि के अनुसार भी ब्राह्मण के लिये निष्कारण छ: अंगों को पढना चाहिये। तभी वेदादि को पढ़ सकता है। ब्राह्मण अपनी इच्छा से किसी अन्य का निर्वाह भी कर सकता है , जैसे ब्राह्मण क्षत्रिय की भाँति जीवन जीना चाहे तो वह भी उत्तम कर्म माना जायेगा, क्योंकि शास्त्र में ब्राह्मण को क्षत्रिय का जनक कहा गया है, इसी कारण क्षत्रिय ब्राह्मण प्रदत ज्ञान के द्वारा रक्षा करता हैं, क्योंकि ब्राह्मण के पास मंत्रो से जनित ईश्वरकृत शक्ति रहती है। महर्षि दयानंद ने ब्राह्मण के लिए समस्त विद्याओं का अध्ययन - अध्यापन बताया है। ईश्वर के द्वारा वेदों की विद्या से ब्राह्मण शरीर प्राप्त होता है। अतः राजा को ब्राह्मण को दुःख नहीं देना चाहिए। वेद विद्या के द्वारा से ब्राह्मण लोगो को सन्मार्ग पर लाने में समर्थक होते हैं[8]। ब्राह्मण धर्म की प्रतिमूर्ति होता है[9] अर्थात् धर्म का उद्गम ब्राह्मण से ही होता है। जो धर्म का रक्षक होता है। धर्म का मूल वेद है जिसके आधार पर वह सबका अधिकारी होता है अर्थात् जो कुछ भी पृथ्वी पर है वह सब ब्राह्मण का ही होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ब्राह्मण सबका कल्याण करता है इस लोक के लिए भी और परलोक के लिए भी। मनु के अनुसार ब्राह्मण अपना ही पहनता है अपना ही खाता है। स्वकीय धन से ही दान करता है। अन्य का आश्रय स्थान भी ब्राह्मण ही होता है[10]। ब्राह्मण शास्त्र के अनुसार नित्य व्रतों के अनुष्ठान से मन-वचन तथा कर्म में निर्लिप्त होकर द्वेषादि दोषों से विमुक्त रहता है[11]। ब्राह्मण पवित्रता का नाम है और शरीर को भी ज्ञान से पवित्र किया जाता है। ब्राह्मण स्वकीय ज्ञान के आधार पर यम नियमों और मंत्र सिद्धि, आयुर्वेद की अमोघ ओषधियों के प्रयोग से सर्वप्रथम अपने शरीर को तदनन्तर दूसरों के शरीर को पवित्र करने में समर्थ होता है। यही वेद के वेदत्व से युक्त ब्राह्मण का ब्राह्मणत्व होता है। महर्षि दयानन्द अनुसार ब्राह्मण जीवन सन्यास के जीवन की तरह मूलतः एकसमान माना गया हैं। भीष्म मत अनुसार ब्राह्मण के लिए आयु के अनुरुप चार आश्रमों का विधान है[12]। ब्राह्मण जगत् को पवित्र करने वाले कहे जाते है[13]। ब्राह्मण का आचार-व्यवहार धर्म के अनुसार होता है जो उसे जगत् में प्रतिष्ठित बनाता है[14]। संभवतः लोक का आचार्य कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी। आचार से भ्रष्ट ब्राह्मण वेद के फल को प्राप्त नहीं करता है[15]। ब्राह्मण

के तुल्य क्षत्रिय के भी कर्तव्य होते है। जिसमें पूज़ा,कर्मकांड जैसे भक्तिमय कार्य की रक्षा करना अर्थात क्षत्रिय का मुख्य दायित्व होता है, अपने बाहुबल से सभी दीन-हीन की रक्षा तथा न्याय पूर्वक शासन करना चाहिए, क्योंकि यदि क्षत्रिय न्याय नहीं करता है तो प्रजा मे अराजकता होने से प्रजा की रक्षा नहीं हो पायेगी। बलशाली निर्बल को खाने लगेगा। क्षत्रिय का दूसरा कार्य दान करना अर्थात ऋषि, ब्राह्मण, राजा वा दारिद्र में कोई जिसे दान की आवश्यकता है। उसे क्षत्रिय द्वारा दान दिया जाना चाहिये। क्षत्रिय को लोक उपकारक होकर यज्ञ आदि सम्पन्न करना चाहिए, क्योंकि वेदों के अनुसार यज्ञ ब्रह्माण्ड का श्रेष्ठ कर्म है। कोई शुभ कार्य हो राजा को उसे यज्ञ आदि से प्रारम्भ करना चाहिये और वेद आदि का अध्ययन निरन्तर करना चाहिये। जितने भी वैदिक कार्य होते हैं वे सब कुशल वेद्वेत्ताओं के सान्निध्य में ही होने चाहिये, क्योंकि राजा को राजृत्व के गुण प्राप्त करने के लिए ब्राह्मण का सान्निध्य अति आवश्यक है। राजा को प्रत्येक क्षण अध्ययन कार्य मे लिप्त रहना चाहिए जिससे राजनीति और लोकतंत्र विषयक ज्ञान होकर प्रजा के हित में कार्य निरन्तर करने का आदेश दे। क्षत्रिय का सबसे आवश्यक कार्य यह होता है कि विषय-वासनाओ से दूर रहना चाहिए, क्योंकि राजा यदि स्त्री संसर्ग में होगा तो विषयों का दास होकर स्वकीय राज्य को नष्ट कर लेता है। भारतीय इतिहास को उठा कर देखा जा सकता है कि जो राजा विषयवासना से ग्रस्त रहा वह विनाश की ज्वालाओं में जल कर भस्म हो गया। विषयों में फंसा प्रजा का हित नहीं कर सकता है। इस प्रकार का स्वभाव क्षत्रिय का महर्षि मनु ने कहा है[16]। जो ब्राह्मण होकर क्षत्रिय कहलाते हैं[17]। महाभारत के अनुसार वह शास्त्रोक्त ब्राह्मण धर्म का परित्याग कर जो मनुष्य विषय भोगों में, तीक्ष्ण स्वाभाव वाले और क्रोध करने वाले हो गये, जिसके कारण उनका शरीर रक्त वर्णी हो जाता हैं, वे क्षत्रिय कहलाते हैं। महर्षि वेदव्यास ने क्षत्रिय के तिरस्कृत को समस्त वर्णों का तिरस्कार कहा हैं। क्योंकि क्षत्रवर्ग के तिरस्कार से समस्त प्रजा का विनाश कहा गया हैं[18]। क्षत्रिय द्वारा ब्राह्मण का सम्मान होना चाहिए अन्यथा ब्राह्मण का तिरस्कार क्षत्रिय के लिए अनर्थकारी होता हैं[19]। महर्षि वेदव्यास ने क्षत्रिय के लिए वेदों का अध्ययन अति आवश्यक कहा हैं, लेकिन उनका अध्यापन करने की अनुमति नहीं हैं। इसी प्रकार यज्ञ करने की अनुमति हैं, यज्ञ करवाने की नहीं। दान देने की अनुमति हैं व दान लेने की नहीं, उत्तम याचिका कर्ता की अभीष्ट को पूर्ण करने का आदेश हैं लेकिन स्वयं याचना करना नहीं[20]। महर्षि वेदव्यास के अनुसार युद्ध के नियमों का उल्लंघन करने वाला क्षत्रिय कहलाने योग्य नहीं हैं तथा उन्हें क्षत्रियो के बीच मैं बैठने की अनुमति नहीं देनी चाहिये। यही क्षात्र धर्म कहता हैं[21]। क्षत्रीय के अनंतर वैश्य का स्थान आता है[22]। महर्षि वेदव्यास के द्वारा सभी वर्ण एकसमान बताये गये हैं[23]। महाभारत के अनुसार वैश्य का कार्य दान, अध्ययन, यज्ञ तथा उचित साधनों से अर्जित हुई धनादि का संचय ही वैश्य का कार्य है[24]। व्यापार तथा लाभप्रद पशओं का पालन भी वैश्य के लिए अनिवार्य हैं, इन कथित समस्त कार्यों का निष्पादन नहीं करने पर विपरीत कर्म कहलाता हैं, वह कर्म वैश्य के अनुकूल नहीं होते। समस्त राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था अर्थ पर निर्भर करती है और इस दृष्टि से वैश्य को समाज व राष्ट्र का आधार होता है। दुष्कर्म, छल-कपट का परित्याग कर कृषि, गौपालन तथा वाणिज्य जैसे आदि सत्कर्मों में संलगन रहना चाहिये। श्रेष्ठ व्रतों तथा सत्यादि नियमों का पालन करने से इन्द्रियनिग्रह से शौचाचार में बद्ध होते हैं[25]। गौपालन करने से वैश्य को श्रेष्ठ स्थिति को प्राप्त होते हैं[26]। स्वपन में भी वैश्यों के द्वारा गौ पालन नहीं करने का विचार नहीं आना चाहिये, क्योंकि निःसंदेह वैश्य के जीवन में गौ सेवा बहुत महत्वपूर्ण हैं, वैश्य का जीवन इससे श्रेष्ठता के शिखर तक जाता हैं[27]। गोदुग्ध का मानव जीवन में बड़ा महत्त्व है। गोदुग्ध सात्विक होने से बुद्धि को संवर्धित करता है। जिससे मनुष्य स्वकीय कल्याण कर सकता है। भारतीय संस्कृति में यज्ञ मुख्य है वह गोघृत से किया जाता है और भी अन्य पदार्थ गोघृत व दुग्ध से बनते है जो जनमास के स्वस्थ्यरक्षण में अति महत्त्व पूर्ण भूमिका निभाता है। इस प्रकार वैश्य राष्ट्र की पूँज़ी होता है।

वैश्य धन से शोभा प्राप्त करता हैं और उससे ही उसकी रक्षा होती हैं[28]। इसी से राष्ट्र का संरक्षण भी होता है। ब्राह्मण भी विपत्ति आने पर स्वकीय जीवन निर्वाह करने के लिए वैश्य आजीविका उपार्जन कर सकता हैं[29]। अत: किसी भी अवस्था में वैश्य का महत्त्व कम नहीं है। वैदिक काल की तरह महाभारत काल में शूद्रों की स्तिथि सम्यक दृष्टिगोचर थी, क्योंकि शांतिपर्व के अनुसार शूद्र वर्ण को भी सभी वर्णों की भाँति सम्मान प्राप्त था। इस प्रकार सम्पूर्ण साहित्य को दृष्टिपात् करने यही ज्ञात होता है कि सभी वर्णों का अपना अपना महत्त्व है। महर्षि मनु के द्वारा शूद्र के लिए एक ही कार्य का विधान बताया गया हैं। जिसकी पालना करने के तहत उन्हें सभी वर्णों की सेवा करने का प्रावधान हैं[30]। महर्षि वेदव्यास द्वारा शूद्र को सेवा करनी चाहिए, उसके महद् सुख का जनक शास्त्रों द्वारा लिखित उनका सेवा धर्म हैं[31]। ब्राह्मण सर्वश्रेष्ठ वर्ण हैं, उसकी सेवा सबसे अधिक करनी चाहिए, कोई मनुष्य सर्वकर्मा तब कहलाता हैं जब वह सभी कर्म शूद्रवत करता है[32]। शूद्र अपने धन का स्वामी वह खुद न होकर बल्कि उसका स्वामी ही उसके धन का स्वामी होता है[33]। भिक्षा द्वारा भी शुद्र अपना जीवन यापन कर सकता है[34]। शूद्र महर्षि वेदव्यास अथवा शान्तिपर्व के अनुसार आजीविका के लिए यज्ञ करवा सकता है[35]। (मनु 1.90) अंतिम वर्ण शूद्र को ही माना गया है। महर्षि दयानंद में शूद्र को वेद पढने का अधिकार है क्योंकि विद्यादि ग्रहण कर्म द्वारा वह ब्राह्मण पद को प्राप्त कर सकता है। महर्षि दयानन्द की तात्त्विक अत्यन्त ही कल्याणकारक प्रतीत होती है। जिसमें मानव के कल्याण मात्र की भावना उद्घोषित होती है। किन्तु मनु ने एक ही कार्य शुद्र का बताया है की वह तीनों वर्णों की सेवा करें। सम्भवतः ऐसा हो सकता है की जिसने एक भी वेद न पढ़ा हो उसे शूद्र कहा गया हो अर्थात् विद्या द्वारा तो सभी ब्राह्मणत्व को प्राप्त हो सकते हैं[36]। आधुनिक युग में शुद्र के विषय में विचारधारा कुछ अन्य ही बना ली गयी है। आज राष्ट्र तथाकथित जातियों विभाजित हो गया है। शुद्र का जो कार्य था वह सेवा था। जो अत्यन्त महत्वपूर्ण वैदिक कर्मों में गिना जाता है। सेवा करना कोई तुच्छ कार्य नहीं है। यह केवल शुद्र का ही नहीं वरन् समस्त वर्णों के लिए सेवा का भाव होना चाहिये। अतः यह वर्ण व्यवस्था जाति आदि से नहीं है वरन् कर्म से ही माना जाना चाहिये। मनुस्मृति ऋषि ग्रन्थ है और ऋषि साक्षात्कृत धर्माण ऋषयोबभूवः अर्थात् साक्षात् ईश्वर के विज्ञान वा वेत्ता होते हैं, मन्त्र दृष्टा होते हैं, सत्य असत्य का निर्णय करने वाले होते हैं, निष्पक्ष, निस्वार्थ और लोक का कल्याण करने वाले होते हैं। उनके तथ्यों को समझने के लिए आपार मेधा शक्ति की आवश्यकता होती है। अत: मनु के वर्णविज्ञान को जानकर उसका जीवन में लाभ लेते हुये परलोक में भी धर्म से युक्त होना चाहिये। अल्पबुद्धि तो अमृत को भी विष कहा करते हैं। आधुनिक युग में जो मनुस्मृति के प्रति घृणा का भाव देखा जाता है वह अल्पज्ञों के अज्ञान को दर्शाता है। अतः मनुस्मृति जैसे सद्शास्त्र को ठीक ठीक जानकर सभी को लाभ लेना चाहिये।

संदर्भ सूची :-

1. आचार्य अग्निव्रत नैष्ठिक, सम्पूर्ण वेदविज्ञान आलोक ऐतरेयब्राह्मण का वैज्ञानिक भाष्य
2. मनु 1.93 उत्तमाङ्गोद्भवाज्ज्येष्ठ्याद्ब्रह्मणश्चैव धारणात्। सर्वस्यैवास्य सर्गस्य धर्मतो ब्राह्मणः प्रभुः।।
3. मनु 1.88 अध्यापनं अध्ययनं यजनं याजनं तथा। दानं प्रतिग्रहं चैव ब्राह्मणानां अकल्पयत्।।
4. मनु 1.84 वेदोक्तं आयुर्मर्त्यानां आशिषश्चैव कर्मणाम्। फलन्त्यनुयुगं लोके प्रभावश्च शरीरिणाम्।।
5. मनु 1.94 तं हि स्वयंभूः स्वादास्यात्तपस्तप्त्वादितोऽसृजत्। हव्यकव्याभिवाह्याय सर्वस्यास्य च गुप्तये।।
6. मनु 1.95 यस्यास्येन सदाश्नन्ति हव्यानि त्रिदिवौकसः। कव्यानि चैव पितरः किं भूतं अधिकं ततः।।
7. शान्तिपर्व 342.16, ब्रह्मा विश्वं सृजत् पूर्वं सर्वादिर्निर्वस्कृतम्। ब्रह्मघोषैर्दिवं गच्छन्त्यमरा ब्रह्मयोनय।।

8. मनु 1.96 भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां बुद्धिजीविनः। बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः।।
9. मनु 1.98 ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः। कृतबुद्धिषु कर्तारः कर्तृषु ब्रह्मवेदिनः।।
10. मनु 1.101 स्वं एव ब्राह्मणो भुङ्क्ते स्वं वस्ते स्वं ददाति च।आनृशंस्याद्ब्राह्मणस्य भुञ्जते हीतरे जनाः।।
11. मनु 1.104इदं शास्त्रं अधीयानो ब्राह्मणः शंसितव्रतः। मनोवाग्गेहजैर्नित्यं कर्मदोषैर्न लिप्यते।।
12. मनु 1.105 पुनाति पङ्क्तिं वंश्यांश्च सप्तसप्त परावरान्। पृथिवीं अपि चैवेमां कृत्स्नां एकोऽपि सोऽर्हति।।
13. मनु 1.107 अस्मिन्धर्मोऽखिलेनोक्तो गुणदोषौ च कर्मणाम्। चतुर्णां अपि वर्णानां आचारश्चैव शाश्वतः।।
14. मनु 1.109 आचाराद्विच्युतो विप्रो न वेदफलं अश्नुते। आचारेण तु संयुक्तः सम्पूर्णफलभाज्भवेत्।।
15. मनुस्मृति 1.89, प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनं व च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।
16. शान्तिपर्वृ 189.5, क्षत्रजं सेवते कर्म वेदाध्ययनसंमतः। दानादानरतिर्यश्च स वै क्षत्रिय उच्यते।।
17. मनुस्मृति 8.302, स्तेनानां निग्रहादस्य यशो राष्ट्रं च वर्धते।।
18. शान्तिपर्व 73.5, विमाननात्तयोरेव प्रजा नश्येयुरेव ह। ब्रह्मक्षत्रं हि सर्वेषां धर्माणांमूलमुच्यते।।
19. वही 74.20, बाहुवीर्यार्जितां सम्यक्क्षत्र-धर्ममनुव्रतः।।
20. शान्तिपर्व 95.7,10,15, नासंनद्धो नाकवचो योद्धव्यः क्षत्रियो रणे। क केन वाच्यश्च विसृजस्व क्षिपामि च॥
स चेत्संनद्ध आगच्छेत्संनद्धव्यं भवेत्।
स चेत्ससैन्य आगच्छेत्ससैन्यस्तमथाह्वयेत्॥
स चेन्निकृत्या युध्येत निकृत्या तंप्रयोधयेत्।
अथ चेद्धर्मतोयुध्येद्धर्मेणैव निवारयेत्॥
नाश्वेन रथिनं यायादुदियाद्रथिनं रथी।
व्यसने न प्रहर्तव्यं न भीताय जिताय च ॥
यो वै जयत्यधर्मेण क्षत्रियोवर्धमानकः।
आत्मानमात्मना हन्ति पापोनिकृतिजीवनः।।
21. मनु 1.89 प्रजानां रक्षणं दानं इज्याध्ययनं एव च। विषयेष्वप्रसक्तिश्च क्षत्रियस्य समासतः।।
22. शान्तिपर्व 72.4, ब्रह्मणो मुखतः सृष्टो ब्राह्मणो राजसत्तम। बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्ट ऊरुभ्यां वैश्य उच्यते।।
23. मनुस्मृति 1.90, पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययनं व च। वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिं व च।।
24. शान्तिपर्व 60.21, वैश्यस्यापीह यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामिभारत। दानमध्ययनं यज्ञः शौचेन धनसंचयः।।
25. शान्तिपर्व 47.6, पादौयस्याश्रिताः शूद्रास्तस्मै वर्णात्मने नमः।।
26. शान्तिपर्व 165.52, वैश्यं हत्वा तु वर्षे द्वेऋषभैकशताश्च गाः|
27. शान्तिपर्व 293.14,अधीते चापि योविप्रो वैश्यो यश्चार्जने रतः|
28. शान्तिपर्व 63.16, कृतकृत्यो वयोतीतो राज्ञः कृतपरिश्रमः। वैश्यो गच्छेदनुज्ञातो नृपेणाश्रममण्डलम्।।
29. मनुस्मृति 1.91, एकं एव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। तेषां व वर्णानां शुश्रूषां अनसूयया।।
30. मनुस्मृति 1.91, एकं एव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। तेषां व वर्णानां शुश्रूषां अनसूयया।।
31. शान्तिपर्व 60.28-29, शूद्रस्यापि हि यो धर्मस्तं ते वक्ष्यामिभारत। प्रजापतिर्हि वर्णानां दासंशूद्रमकल्पयत्॥
तस्माच्छूद्रस्य वर्णानां परिचर्याविधीयते। तेषां शुश्रूषणाच्चैवमहत्सुखमवाप्नुयात्॥
शूद्र तान्परिचरेत्त्रीन्वर्णाननसूयकः।।
32. शान्तिपर्व 60.30, संचयांश्च न कुर्वीत जातु शूद्रः कथंचन।।
33. शान्तिपर्व 60.32-34, अवश्यभरणीयो हि वर्णानांशूद्र उच्यते॥

छत्रं वेष्टनमौशीरमुपानद्व्यजनानि च।
यातयामानि देयानि शूद्राय परिचारिणे॥
अधार्याणि विशीर्णानि वसनानिद्विजातिभिः।
शूद्रायैव विधेयानि तस्यधर्मधनं हि तत्॥
यश्च कश्चिद्द्विजातीनां शूद्रःशुश्रूषुराव्रजेत्।
कल्प्यां तस्य तुतेनाहुर्वृत्तिं धर्मविदो जनाः।।

34. मनुस्मृति 2.24, तान् द्विजातयो देशान्संश्रयेरन्प्रयत्नतः।
षा धर्मस्य वो योनिः समासेन प्रकीर्तिता।।

35. मनु 1.90 पशूनां रक्षणं दानं इज्याध्ययनं एव च।वणिक्पथं कुसीदं च वैश्यस्य कृषिं एव च।।

36. मनु 1.91 एकं एव तु शूद्रस्य प्रभुः कर्म समादिशत्। एतेषां एव वर्णानां शुश्रूषां अनसूयया।

•